P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-IV* ISSUE-I*September-2016
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

संस्कृत साहित्य में रस विवेचन

सारांश

संस्कृत साहित्य को पूर्ण रूप से समझने समझाने के उद्देश्य से कवियों ने साहित्य में रस की खोज की होगी।उनकी यही खोज संस्कृत साहित्य को ही नहीं वरन् सम्पूर्ण साहित्यों को ही रूचि कर बना दिया अधिक समझने योग्य बना दिया।रस के द्वारा साहित्य की विशेषताओं को भली प्रकार से समझने सहयोग मिलता है।

मुख्य शब्द : सम्प्रदाय, उद्देश्य, आचार्य, सूत्र, साहित्य, व्याख्याकार रसास्वादन, विश्लेषण, अद्वैतरसानुभूति, अवस्था काव्यशास्त्री।

कुसुम लता
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
राजकीय रजा स्ना0,
महाविद्यालय,
रामपुर,उ0 प्र0

प्रस्तावना

रस सम्प्रदाय के माध्यम से विभिन्न रसों की विवेचना यहाँ पर की गयी है। संस्कृत आचार्यो ने रस के स्वरूप का अत्यन्त विस्तृत रूप दिया है। यहाँ पर रस के सम्बन्धों का भी विस्तृत वर्णन किया गया है।अति सरल उदाहरणों द्वारा समझाने का प्रयास किया गया है तथा विभिन्न ये–रसों का भी विश्लेषण किया गया है।

रस–सम्प्रदाय साहित्य का प्रधानभूत और आदि सम्प्रदाय है। भरतमुनि रस सिद्धान्त के आदि प्रवर्त्तक माने जाते हैं। आचार्य भरतमुनि द्वारा रचित नाटय शास्त्र ही उपलब्ध ग्रन्थों में सर्वाधिक प्राचीन हैं। इससे विदित है कि रस की प्रतिष्ठा आदिकाल से है। आचार्यों का मानना है कि रस काव्य का प्राण है। काव्य तत्व के अन्तर्गत अन्य सम्प्रदायों में भी रस की उपेक्षा नहीं की जा सकती। साहित्य में प्रवाहित होने वाले मनोवेगों का आस्वादन रस है। उसके साथ काव्यानन्द का अभेद्य संबंध है। रस शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ–संस्कृत वाड्मय में रस शब्द की जिसमें आस्वाद मिले वही रस हैं। संस्कृत वाड्मय के बहुत सारे ग्रन्थों में भिन्न–भिन्न अर्थों में रस प्रयुक्त हुआ है।

वैदिक संहिताओं में रस का अर्थ जूल होता है। उपनिषदों में रस ब्रह्य या ब्रह्यानन्द का वाचक है। तैत्तरीयोपनिषद की यह युक्ति इसी अर्थ की सूचक है।

"रसौवैसः रसह्येवायं लब्ध्वाडडनन्दो भवति"।[1]

आयुर्वेद में 'रस'को औषधि के अर्थ में माना है। अलंकार शास्त्र में यह सर्वाधिक व्यापक रूप धारण करके अवतीर्ण हुआ है। इस शास्त्र में सर्वाधिक अनिर्वचनीय साहित्यिक आनन्द के रूप में रस शब्द प्रयोग हुआ है। रस रहित कोई भी शब्दार्थ साहित्य का विधान नहीं कर सकता इसलिए रस साहित्य का प्राण निश्चित किया गया है।

रस सम्प्रदाय के आदि आचार्य भरतमुनि हैं, किन्तु इनका रस विवेचन नाटक और रूपक से ही अधिक संबंधित है। सूत्र है

"विभावानुभाव व्याभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पन्ति।"[2]

अर्थात् विभाव' अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

उपर्युक्त सूत्र को समझने के लिए विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों को भी समझना अपरिहार्य प्रतीत होता है। नाटक या काव्य आदि साहित्य में चित्तवृत्तियों को ही प्रतिच्छाया दृष्टिगोचर होती है। साहित्य में क्रमशः इन्हीं को विभाव, अनुभाव और व्याभिचारी भाव (संचार) कहा जाता है। भट्ट लोल्लट, श्री शंकुक, भट्ट नायक व अभिनवगुप्त ने चार जिन्होंने सूत्र में प्रयुक्त संयोग और निष्पत्ति शब्दों की अपने–अपने सम्प्रदाय के अनुसार व्याख्या उपन्यस्त की है। भटटलोल्लट ने निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्ति लिया है। यह सम्बन्ध उत्पाद्य–उत्पादक, गम्यगमक और पोष्य–पोषक आदि प्रकार का सम्बन्ध माना गया है।

भटटलोल्लट के मत में कई दोष हैं जिनका निराकरण शंकुक ने अनुमितिवाद से किया है। शंकुक नैय्यायिक थे, इसलिए निष्पत्ति का अर्थ अनुमान या अनुमिति किया है तथा संयोग का अर्थ–अनुमाप्य संबंध माना है। इनका मत है कि नटों में अनेकार्य का आरोप नहीं किया जाता बल्कि ''चित्रतुरंगादिन्याय का अर्थ है कि बच्चे के समान घोड़े के चित्र को ही वास्तविक

इनका मत है कि नटों में अनेकार्य का आरोप नहीं किया जाता बल्कि ''चित्रतुरंगादिन्याय का अर्थ है कि बच्चे के समान घोड़े के चित्र को ही वास्तविक घोड़ा समझ लेना। दर्शक अभिनय में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि वे नट को ही वास्तविक राम समझकर रसानुभूति करते हैं।

आचार्य भरतमुनि के रससूत्र के चारों व्याख्याकारों में आचार्य अभिनव गुप्त का मत सर्वोत्कृष्ट एवं स्थिर हुआ। काव्य के प्रणेता मम्मटाचार्य ने अभिनवगुप्त के मतानुसरण करते हुए रस को परिभाषित करते हुए अभिव्यक्ति की है

"कारणान्यथ कार्याणि सहकरीणि यानि च।
त्यादे– स्थायिनो लोके तानिचेन्नट्यकाव्ययोः।
विभावानुभावास्तत् कथ्यन्ते व्याभिचारिणः।
व्यक्तः से तैर्विभावाद्यैः स्थायीभावो रसः स्मृतः।"[3]

अर्थात् लोक में रति आदि स्थायी भावों के जो कारण, कार्य और सहकारी हैं वे यदि नाट्य और काव्य में प्रयुक्त होते हैं तो वे विभाव, अनुभाव और व्यभियारी भाव कहे जाते हैं और उन विभावादि से व्यक्त वह स्थायी भाव रस कहा गया है।

पियुषवर्षी जयदेव प्रणीत 'चन्द्रालोक' में भी रसास्वादन के हेतु कारण करण और सहकारी कार्यों को क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्याभिचारी कहा गया है।

"आलम्बनोछीपनात्मा विभावः कारणं द्विधा।
कार्योऽनुभावो भावाश्य सहायोव्याभिचार्यपि।।[4]

इसी के अनुरूप 'साहित्य–दर्पण' के रचयिता आचार्य विश्वनाथ ने रस का निरूपण इस प्रकार किया है।

"विभावेनांनुभवन व्यक्तः संचारिणः तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायीभावः सचेतसाम्।।"[5]

अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों के द्वारा अभिव्यक्त हेकर रत्यादि स्थायी भाव सामाजिकों के हृदय में रसता को प्राप्त होते हैं अर्थात् रस रूप में परिणति को प्राप्त होते हैं। दशरुपककार आचार्य धनन्जय ने रस निष्पत्ति की प्रक्रिया का निषपाद निम्नकारिका में इस प्रकार किया है।

विभावै रनुभावैश्य सात्तिवकैर्व्यभि चारिभिः।[6] आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायी भाव और व्याभिचारी भाव के द्वारा जो स्थायी भाव और आस्वादन के योग्य बना दिया जाता है, उसे रस कहते हैं। इसी प्रकार यही बात अड़तीसवीं कारिका में व्यक्त है।

रस विश्लेषण

संस्कृत आचार्यों ने रस के स्वरूप पर अतीव विस्तार से विचार प्रस्तुत किये हैं– आचार्य भरतमुनि, आचार्य अभिनवगुप्त और आचार्य विश्वनाथ के मत इस दृष्टि से अति महत्वपूर्ण हैं।

1. रस का सम्बन्ध केवल सतोगुण से होता है। रसानुभूति की अवस्था में रजोगुण और तमोगुण का परिहार हो जाता है। रज और तम में प्रेरित ममत्व और परत्व की भावनाओं का लोप हो जाता है।
2. रस आस्वाद रूप है। इसका आस्वादन केवल सहृदयों को ही हो सकता है, सामान्य मानवों को नहीं।
3. इसका उदयअखण्ड और अद्वैत रुप में होता है। अद्वैत रुप में होने के कारण अन्य लौकिक और अलौलिक अनुभूतियों का तिरोभाव हो जाता है।
4. अखण्ड और अद्वैतरुपिणी अनुभूति चिन्मय होती है। उसमें ज्ञान की प्रतिष्ठ होती है। वह जड़ रुप नहीं ज्ञान का प्रकाश रुप होती है।
5. रस से उद्भूत होने वाला आनन्द एक विशेष लोकोत्तर चमत्कार से चमत्कृत रहता है और यह चमत्कार ही उसकी अभिव्यक्ति में एक विचित्र आकर्षण भर देता है।
6. रस न तो ज्ञाप्य है और न कार्य उसका साक्षात अनुभव भी नहीं होता है। लौकिक शब्दों में उसकी व्यंजना भी नहीं कि जा सकती, किन्तु रसानुभूति की अवस्था में उसका परिहार केवल क्षणिक मात्र होता है।

रस के अन्तर्गत ने केवल श्रृंगार, करुण और वीर आदि रसों का भी समावेश होता है। रस शब्द से भाव, रसाभावा, भावप्रशम, भावोदय, भावसन्धि और भावशबलता का भी समावेश होता है। साहित्यदर्पण में कहा गया है

"रसभावौ तदाभासौ भावस्य प्रशमोदयौ
सन्धिः शबलता चेति सर्वेऽपि रसानाद्रासा।"[7]

अनेक आचार्य रसों की संख्या को लेकर मतैक्य नहीं हैं। आचार्य भरतमुनि ने नाटयशास्त्र में रसों की संख्या आठ मानी गयी है।

"श्रृंगारहास्य करुणा रौद्रवीर भयानकाः।
वीभत्साद्भुत संज्ञो चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृता।।"[8]

आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश में निर्वेदस्थायिभावोछस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः"[9]

कहकर शान्त रस को नवम रस माना है। काव्यशास्त्रियों ने वात्सल्य एवं भक्ति आदि रसों को भी स्वीकार किया और इस प्रकर रसों की एवं भक्ति आदि में वृद्धि हो गयी। महाकवि भोजराज ने श्रृंगार प्रकाश में श्रृंगार रस को ही प्रमुख रस माना तथा अन्य रसों में उसका ही विस्तार स्वीकारा है

"रसोऽभिमानोऽहंकार श्रृंगार इति गीयते।
योऽर्ध्वस्तस्यान्वयात् काव्यं कमनीयत्वमश्नुते।।
विशिष्टादृष्जन्मायं जन्भिनामन्तरात्मसु।
आत्मा सम्यग्गुणोद्भूतरेके हेतु प्रकाशते।।"[10]

आचार्य विश्वनाथ के पूर्ववर्ती नारायण ने '' अद्भुत' रस को ही प्रधान रस स्वीकार किया''[11]

आचार्य अभिनव गुप्त मोक्ष के परमपुरुषार्थ होने के कारण 'शान्त' रस को प्रमुखता प्रदान करते हैं। कठोपनिषद् का एक उदाहरण इस प्रकार है

'' श्वो भावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्।
सर्वोन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव।
वाहारत्तव नृत्यगीतम्।।[12]

अद्भुत रस

वस्तु–वैचित्रय को देखकर आश्चर्य के संसार से अद्भुत रस की निष्पत्ति होती है। इस रस के देवता गन्धर्व हैं और वर्णपीत है। 'केनोपनिषद' में श्रुति–स्मृति के अनुसार किसी शिष्य ने प्रव्यगात्मविषयक ज्ञान के सिवा

कोई आश्रय न देखकर उस निर्भय, नित्य, नित्य कल्याणमय अचल पद की इच्छा करते हुए ब्रह्म निष्ठगुरु के समीप जाकर पूछा–

''ऊँ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः
केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोतं क
उ देवो युनाक्ति।।[13]

यहाँ पर ऋषि आश्चर्य में पड़ा है कि यह मन किसके द्वारा इच्छित और प्रेरित हो अपने विषयों में गिरता है। किससे प्रेरित हो मुख्य प्राणी चलता है? प्राणी किसकी प्रेरणा से चलता है? आँख तथा श्रोत कौन से देव कार्यों में लगाता है? 'प्रश्नोंपनिषद' में भी इस प्रकार सूर्य, प्राणादि के वर्णन में सर्वत्र अद्भुत रस की अभिव्यक्ति हुई है। यथा

"विश्वरुपं हरिणं जातवेदसं
परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः
प्राणः प्रजानामुदयत्येषसूर्य।। [14]

अर्थात् सर्वरुप, रश्मिवान, ज्ञान सम्पन्न, सबके आश्रय, ज्योतिर्मय, अद्वितीय और तपते हुए सूर्य को जाना है। यह सूर्य सहस्रो किरणों वाला, सैकड़ों प्रकार से वर्तमान और प्रजाओं के प्राण रुप से उदित होता है।

भाव– आचार्य विश्वनाथ द्वारा विरचित' साहित्य दर्पण ' में भावादिकों का स्वरूप इस प्रकार निर्दिष्ट किया गया है कि प्रधानभूत संचारी, देवादि विष्यक रति और उद्बुद्ध मात्र स्थायी इन तीनों को भाव की संज्ञा दी गयी है।

'' संचारिणः प्रधानानि देवादि विषया रतिः।
उदबुद्धमात्रः स्थायी च भाव इत्यापिधीचते।।"[15]

उपनिषद्

वाडमंय में रस के अतिरिक्त भाव की भी सुन्दर निष्पत्ति उपन्यस्त की गयी है। इस दृष्टि से उपनिषदों में ऋषि को देवादि विषयक रति के रूप से भाव के दर्शन होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के परिशीलन से यह निष्कर्ष निकलता है कि संस्कृत साहित्य में शान्त और अद्भुत रस एवं भाव की पर्याप्त उपलब्धि होती है।

उद्देश्य

संस्कृत साहित्य को आधुनिक युग में भी जन–जन तक पहुँचाने उसे सरलता से पढ़ने–समझने योग्य बनाने हेतु प्राचीन काल से ही महान आचार्यों ने प्रयास किए जिसमें आज संस्कृत साहित्य रस अलंकार इत्यादि के माध्यम से समझने और आसानी से जन हृदय तक पहुँचा है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचना से निष्कर्ष निकलता है कि मानव मन के प्रत्येक भाव को रस मान कर विवरण करने से संस्कृत साहित्य अत्यन्त रूचिकर हो गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. तैत्तरीयोपनिषद्: ब्रह्मानन्द वल्ली– 7
2. नाटय शास्त्रः काव्यमालायुच्छक पृष्ठ सं0– 93
3. काव्य प्रकाशः चतुर्थः उल्लासः कारिका सं0 27–28
4. चन्द्रलोकः जयदेव
5. साहित्य दर्पणः तृतीयः परिच्छेदः कारिका सं0– 1
6. दषरुपकः चतुर्थः प्रकाशः कारिका सं0–1
7. यथोपरि तृतीयः परिच्छेद कारिका सं0–2–3
8. नाटय शास्त्र –6/16
9. काव्य प्रकाशः चतुर्थः उल्लासः कारिका सं0–35
10. श्रृंगार प्रकाशः काव्यमालाः –5/1–2
11. साहित्य दर्पणः सम्पादक शलिग्राम पृ0 सं0 – 49
12. कठोपनिषद् –1/26
13. केनोपनिषद् –1/1
14. प्रश्नोपनिषद् –1/8
15. साहित्य दर्पणः –3/260